योग के आधारभूत तत्व

डॉ0 देवेन्द्र कुमार
एसो. प्रोफेसर एवं अध्यक्ष–संस्कृत विभाग
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय अलीगढ़
ई–मेलः chandanamdev2012@gmail.com

सारांशिका

भारतीय चिंतन में अनवरत आत्मज्ञान तथा सत्य की खोज पर वैचारिक मंथन परंपरागत होता रहा है, जिसमें योग विश्व मानव के लिए भारत की महानतम उद्भावना और उद्घोषणा है । सफल व्यक्ति और सभ्य समाज को योग से विशिष्ट कोई अन्य संकल्पना अद्यावधि तो अप्राप्त ही है। परिवार, जाति, समुदाय, क्षेत्र, देश, भाषा,धर्म आदि में संपूर्णता खोज रहे व्यक्ति की प्रवृत्तियां अंततः दूसरों के लिए अराजकता ही उत्पन्न करेंगी। अपने यथार्थ में यह सारी खोज वस्तु तथा पहचान की ही खोज है, विश्रांति कि नहीं। विश्व में सर्वत्र विद्यमान धर्म, देश, जाति आदि के लुभावने नारों से सजाधजा संपूर्ण संघर्ष अपने मूल में बेहद स्वार्थी भ्रामक और वर्चस्वपरक है। प्रायः इसे धर्म युद्ध, न्याय युद्ध या अस्मिता की लड़ाई कह कर लोगों का समर्थन जुटाया जाता है। क्या सामाजिक समरसता के लिए कोई और पद्धति हमारे पास नहीं है? क्या ऐसा कुछ नहीं हो सकता जिस पर दुनिया के सब व्यक्ति चल सके ? जिससे किसी भी व्यक्ति व देश की एकता व अखंडता खंडित नहीं होती हो, जिसको प्रत्येक व्यक्ति अपना सकता हो और जीवन में पूर्ण सुख–शांति व आनंद प्राप्त कर सकता हो ? हां है! एक ऐसा पथ जिस पर निर्भय होकर पूर्ण स्वतंत्रता के साथ दुनिया का प्रत्येक इंसान चल सकता है और जीवन में पूर्ण सुख शांति व आनंद को प्राप्त कर सकता है। यह है महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित 'अष्टांग योग' का पथ। यह कोई मत पंथ या संप्रदाय नहीं अपितु जीवन जीने की संपूर्ण पद्धति है। यदि संसार के लोग वास्तव में इस बात को लेकर गंभीर हैं कि विश्व में शांति स्थापित होनी चाहिए तो इसका एकमात्र समाधान है अष्टांग योग का पालन।

प्रस्तावना

इस दुनिया में खूनी संघर्ष को यदि किसी उपाय से रोका जा सकता है तो वह अष्टांग योग ही है। अष्टांग योग में जीवन के सामान्य व्यवहार से लेकर ज्ञान एवं समाधि सहित अध्यात्म की उच्चतम अवस्थाओं का अनुपम समावेश है। जो भी व्यक्ति अपनी अस्तित्व की खोज में लगा है तथा जीवन के पूर्ण सत्य से परिचित होना चाहता है, उसे अष्टांग योग का अवश्य ही पालन करना चाहिए।1 निश्चय ही योग संसार के समस्त व्यावहारिक और परमार्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहज सुलभ अधिकतम प्रभावी उपाय है।

योग मनुष्य के अंदर सुप्त प्रायः पड़ी अंतर्दृष्टि को प्रबोधित और आंदोलन करता है। अंतर्दृष्टि से रहित व्यक्ति विकास से विश्राम (विश्रांति) तक का प्रकाशमान राजपथ पकड़ने की अपेक्षा विलास से विनाश तक जाने वाला लोभनीय लेकिन कंटकाकीर्ण मार्ग पकड़ लेता है, वह न इहलौकिक को साथ पाता है न पारलौकिक को। योग दुराग्रह सनक,मिथ्याचार और अहंभाव से ग्रसित बुद्धि को न केवल अपने लिए अपितु संपूर्ण मानव समाज के लिए पड़े–पड़े संकट खड़े करती है, को समाहित कर दिव्यता से संपूरित कर देता है। योग का स्पर्श बुद्धि को पर्वत से भी दृढ़ और समुद्र से भी गंभीर बना देता है। अवसाद के क्षणों में ''योग''का साहचर्य सघन विश्रांति देने वाला है। यह शंकालु चित्त को निःशंक कर दिव्य प्राप्तियों के आश्वासन से पूरित कर देने वाला है। संसार का इतिहास योगानुष्ठान द्वारा आत्मदर्शी बने उन महामनाओं की यशोगाथाओं से भरा पड़ा है। जिन्होंने मानव समाज में विद्यमान ईर्ष्या– द्वेष आदि प्रवृत्तियों और सुख–दुख आदि द्वंदों को दूर कर पृथ्वी पर शांति का साम्राज्य स्थापित किया है।

संसार में न केवल साहित्यिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक अपितु धार्मिक और आध्यात्मिक स्तर पर भी जितना कुछ सार तत्व का आविष्कार हुआ है, वह सब कुछेक एकाग्रचित साधकों के अहर्निश एकांतिक तप और साधना के चलते ही संभव हो पाया है। आध्यात्मिक रहस्यों और तथ्यों को जानने के लिए जिस उच्च स्तरीय चेतना और एकाग्रता की आवश्यकता है, भौतिक रहस्यों और नियमों को जानकर वैज्ञानिक आविष्कारों से संसार को रोशन करने वाले वैज्ञानिकों की चेतना और एकाग्रता का स्तर भी उसे कमतर नहीं है। मंत्रों के अर्थों के साथ आध्यात्मिक तत्वों का साक्षात्कार करने वाले यदि ऋषि हैं तो भौतिक नियमों का साक्षात्कार कर नूतन आविष्कार करने वाले मनीषी भी विज्ञान के ऋषि ही हैं। योगजन्य चेतना और एकाग्रता से परिष्कृत बुद्धि से युक्त मनुष्य जो भी करता है ऋषियों जैसा ही करता है। वह तथ्यात्मक जीवन के प्रति अत्यधिक सजग और प्रयासरत रहता है। मनीषी ऐसे व्यक्ति को क्रांतिदर्शी कहते हैं।

भारतीय साहित्य की मूल्यवान कृतियां ब्राह्मण ग्रंथ आरण्यक, उपनिषद् आदि ग्रंथ तथा चिकित्सा, ज्योतिष आदि शास्त्र योग से उत्पन्न विवेक बुद्धि के ही प्रतिफल हैं। इन शास्त्रों में उपलब्ध जड़–चेतन, लोक–परलोक, स्वर्ग–नरक, पुण्य–पाप, कर्म–अकर्म आदि विषयों की यथार्थ मीमांसा विवेक बुद्धि के कारण ही इतनी सटीक हो पाई है। व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि, अहं की अपेक्षा वयम् को सम्मान और अधिमान देने वाली यह विवेक बुद्धि 'योग' का महानतम प्रसाद है। इससे परिचय होने पर समस्त मानसिक और आत्मिक तापों का परिशमन हो जाता है। निश्चय ही वैदिक ऋषियों की अहेतु की कृपाओं में 'योग' का वरदान सर्वोत्कृष्ट है। यह वह विद्या है जो वाद–विवाद से रहित है, यह वह कला है जो चहुंमुखी नैपुण्य देती है और यह वह विज्ञान है जो साधनों के अभाव में भी समस्त सुखों को सुनिश्चित करता है।

योग परम्परा और उसका विकास

याज्ञवल्क्य स्मृति याज्ञवल्क्य ऋषि ने मार्मिक आह्वान करते हुए कहा है कि '' अयं तु परमोधर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्। 2 अर्थात् योग के द्वारा आत्मदर्शन करना ही परमधर्म है। हमें वैदिक समाज की 'योग' विषयक जागरूक प्रवृत्ति का निदर्शन करता है। जीवन और प्रकृति से जुड़े रहस्यों पर पड़े आवरण को अनावृत्त कर देने की उत्कृष्ट अभिलाषा ही कदाचित 'योग' की एक वैज्ञानिक विधि के विकास की हेतु बनी होगी। हम इसे नकार नहीं सकते की मुनि पतंजलि द्वारा 'योग' की इस वैज्ञानिक विधि को सुव्यवस्थित और लेखबद्ध करने से पहले इसकी कोई गौरवशाली परंपरा वैदिक समाज में नहीं थी। वेदों के होते हुए भी महर्षियों द्वारा अन्य शास्त्रों के निर्माण की क्या आवश्यकता थी ? इसका कारण बताते हुए मुनि यास्क ने कहा है कि आलस्य के कारण मनुष्यों ने तत्व ज्ञान को जटिल मानकर उदासीन होना शुरू कर दिया था। ऋषियों ने शास्त्रों के द्वारा इसी तत्व ज्ञान को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया। अंतिम रूप से आज हम यह नहीं जानने की या घोषणा करने की स्थिति में तो नहीं है कि योगशास्त्र स्वतंत्र रूप से कब अस्तित्व में आया? परंतु वैदिक संहिताओं से लेकर अपेक्षाकृत अत्यंत पश्चातवर्ती पुराणों तक हमें 'योग' विषयक संदर्भ प्रचुरता के साथ मिलते हैं। अनेक वैदिक ऋचाऐं प्रत्यक्षतया अथवा प्रकारांतर से 'योग' के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित कर रही हैं। समाहित मन,प्राण,साधना आदि 'योग' की विभिन्न स्थितियों और प्रक्रियाओं पर यह ऋचाऐं सिलसिलेवार न सही किंतु हमारा ध्यान अवश्य आकृष्ट करती हैं। ऋग्वेद के 1. 18.7, 1.34.9, 10.13.1 आदि मंत्रों को हम 'योग' विषयक उद्घोषणा करता हुआ पाते हैं। यजुर्वेद के अनेक मंत्रों में हम समाहित मन और उसके प्रतिफल का सुंदर निदर्शन पाते हैं। यजुर्वेद के 11वें अध्याय के 1 से 5 तक के मंत्रों से उत्कृष्ट 'योग' की घोषणा कौन कर सकेगा ?

'' युञ्जते मनऽउत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः'' 3 ।

सिद्धयोग मनीषी ऋषि दयानन्द ने युज्जते का अर्थ स्थिर करना कहा है। मन को स्थिर करने का भाव 'युज्जते मनः 'में है बुद्धियों को स्थिर करने का भाव 'युज्जते धिया' दिया में है जबकि मेधावी सद–असद विवेकवान व्यक्ति विपश्चितः शब्द से बोध्य है। जैसा कि यजुर्वेद में वर्णन है –

''युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्वाय सविता धियः ''4 । ऋषि दयानंद ऋग्वेद आदि भाष्यभूमिका में इस मंत्र में आए युञ्जानः पद का अर्थ योगः कर्वाणः सन् ' (मनुष्याः) 'योग' करते हुए (मनुष्य) करते हैं।

यजुर्वेद के ऊपर सांकेतिक सभी मंत्र योग की विस्तृत परिचर्चा करने वाले श्वेताश्वतर उपनिषद् में यथावत पढ़े गए हैं। अथर्ववेद (19.8.2) में भी हम भी रूप में 'योग'शब्द विद्यमान पाते हैं। योग प्रक्रिया के सबसे अहम सोपान प्राण–विद्या का हम वैदिक ऋचाओं में माहिती विस्तार देखते हैं। वैदिक संहिता में प्राण, अपान, व्यान, उदान, और सामान प्राणों का हमें बहुशः उल्लेख मिलता है। यद्यपि प्राण एक ही है परंतु कार्य वैभिन्य एवं स्थान स्थिति और चेष्टा भेद से उनके अनेक नाम रख लिए गए हैं। यजुर्वेद के मंत्रों में हमें कहीं दो, कहीं तीन, कहीं चार और एक दो स्थलों पर पांचो प्राणों का भी युग्म रूप से उल्लेख मिलता है। प्राणों के यजुर्वेद संहिता में प्राण, अपान, व्यान, और उदान का

बहुशः उल्लेख है जबकि सामान नमक प्राण को यत्र–तत्र ही स्मरण किया गया है।5 अथर्ववेद में प्राण और अपान तथा व्यान और उदान की युगल का अतिशय उल्लेख उपलब्ध होता है।6 वस्तुतः प्राणों का सबसे विस्तृत उल्लेख है ही अथर्ववेद में। अथर्ववेद की 11 वें कांड का चौथा सूक्त प्राण विद्या का अनुपम विवरण प्रस्तुत करता है। इस सूक्त में व्यष्टि से समष्टि तक प्राण के विभिन्न आधारों एवं क्रियाकलापों को स्मरण कर नमन किया गया है। सूक्त का प्रथम मंत्र ही प्राण की व्यापकता को रेखांकित करते हुए कहता है कि 'उस प्राण के प्रति सब का नमन, जिसके वश में यह सब कुछ है। जो समस्त प्राणियों का ईश्वर है और जिसमें यह सब प्रतिष्ठित है।7 यजुर्वेद की एक ऋचा इन प्राणों को ऋषि कहकर संबोधित करती है।8 शरीर में विद्यमान प्राण रूप यह ऋषि ही मन मस्तिष्क को ऋषि रूप में विकसित और प्रतिष्ठित करते हैं। ऋषि अर्थात अंतर्निहित तथ्यों और रहस्यों को यथावत् जानने समझने की दृष्टि विशेष। तार्किक और बौद्धिक उत्कर्ष की चरमावस्था है यह ऋषित्व। ऋषित्व के अभाव में शास्त्रोक्त तथ्यों और विधानों का सम्यक् परिज्ञान असंभव प्रायः ही है। योगचर्या के अभाव में ऋषित्व की प्राप्ति असंभाव्य है। अतः स्पष्ट ही है कि योगजन्य प्रज्ञाविवेक से ही वेद मंत्रों में अंतर्भूत तत्वों को जाना जा सकता है।

अहिर्बुधन्य संहिता योग के आदि प्रवक्ता के रूप में हिरण्यगर्भ का परिचय देती है। इसके अनुसार योगानुशासन एवं पशुपत योग इन दोनों के प्रवर्तक हिरण्यगर्भ हैं । अहिर्बुधन्य संहिता योग को बहिरंग तथा अंतरंग नामक दो भेदों वाला बतलाकर इसे यमादि अंगों वाला निरूपित करती है। याज्ञवल्क्य स्मृति9 और महाभारत10 ''हिरण्यगर्भो योगस्य वक्त नान्यः पुरातनः'' कहकर हिरण्यगर्भ को ही योग का आदि प्रवक्ता स्वीकार करते हैं। महाभारत का एक अन्य संदर्भ इस हिरण्यगर्भ को '' द्युतिमान और विभुः'' बताते हुए इसे वेदों में बहुशः स्मृत बताता है।11 ऋग्वेद की 10 वें मंडल का 121 वां सूक्त हिरण्यगर्भ सूक्त' कहलाता है। महाभारत द्वारा, द्युतिमान और विभुः'' कहा गया। हिरण्यगर्भ और कोई नहीं वस्तुतः ऋग्वेदीय हिरण्यगर्भ सूक्त का ही तेजोमय ब्रह्म है। अद्भुत रामायण इस हिरण्यगर्भ को जगत का अंतरात्मा घोषित करती है। इस समस्त विवरण से स्पष्ट ही है कि वैदिक परंपरा 'योग' को ईश्वर प्रोक्त ही स्वीकार करती रही है।12

'योग' के प्रवक्ता हिरण्यगर्भ के विषय में कुछ इतर धारणाएं भी विद्वानों ने व्यक्त की हैं। कुछ मनीषी सांख्य शास्त्र के प्रवक्ता मुनि कपिल को ही हिरण्यगर्भ कहते हैं। तो कुछ अन्य हिरण्यगर्भ नाम के किसी ऋषि को 'योग' का आदि प्रवक्ता बताते हैं। हिरण्यगर्भ शास्त्र आति विस्तृत था शायद उसके सार को ग्रहण करके ही पतंजलि ने 'योगदर्शन' का प्रणयन किया है।

हिरण्यगर्भ प्रोक्त इस 'योग' का अपेक्षाकृत विकसित रूप हमें उपनिषद् साहित्य में प्राप्त होता है। यद्यपि यह इतना क्रमिक और सुसंबद्ध तो नहीं है जितना योग सूत्रों में। फिर भी योगशास्त्र की समस्त रूप रचना उपनिषदों में उपलब्ध होती है। आत्मदर्शन की उत्कृष्ट अभिलाषा ही जिन ग्रन्थों के प्रणयन की प्रेरणा बनी हो वे 'योग' के विस्तृत आधारों से आखिर कैसे निरपेक्ष हो सकते हैं? 'योग' दर्शन का लक्ष्य है– चित्तवृत्ति के निरोध द्वारा दृष्टा की स्वरूप में अवस्थिति। वस्तुतः यह आत्मदर्शन की समाधि की स्थिति है। उपनिषदों का भी यही लक्ष्य है। मैत्रेयी के समक्ष किया गया याज्ञवल्क्य का आह्वान आत्मदर्शन विषयक उत्कण्ठा का चरमोत्कर्ष है।13 ईशोपनिषद् जिस हिरण्यमय आवरण को हटाकर सत्य के साक्षात्कार का परामर्श देता है, वह आवरण योगशास्त्र में पंच क्लेशों के अंतर्गत पठित और अन्य सभी क्लेशों का मूल अविद्या के अतिरिक्त और क्या है? आयुर्वेद में भी प्रज्ञा अपराधों को ही सभी रोगों का मूल कहा गया है। उपनिषदों में प्रमुख केन, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, मैत्रायणी, कौशीतकी, तथा श्वेताश्वतर आदि में उपदिष्ट ब्रह्मविद्या क्या 'योग' विद्या से इतर है? अनेक उपनिषदें विषय का प्रवर्तन ही 'ब्रह्मवादिनो वादन्ति' वाक्य के साथ करती है। उपनिषदों में हमें स्पष्ट रूप से आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि आदि योगांगों के नाम तथा विधि उपलब्ध होती है। यह– नियम के अंगभूत शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि का हम उपनिषदों में प्रचुरता से उल्लेख पाते हैं। तप, ब्रह्मचर्य एवं सत्यपरक विवरण तो जैसे उपनिषदों के प्राणभूत हैं।

भारतीय दार्शनिक चिंतनधाराओं में योग अनुष्ठान को अत्यंत महत्व मिला है। दर्शन ग्रन्थों एवं उनके भाष्यों में योग प्रकरण प्रमुखता से वर्णित है। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से 'योग' दर्शन सांख्य दर्शन का जोड़ीदार है। यद्यपि संख्या शास्त्र 'योग' दर्शन से पर्याप्त प्राचीन माना जाता है, परन्तु अत्यंत सामानता के चलते इन दोनों को परस्पर पूरक भी समझ गया है। भगवान कृष्ण प्रतिपादित भगवद्गीता तो इन दोनों शास्त्रों को पृथक् समझने वाले व्यक्ति को बाल बुद्धि ही घोषित करती है।14 सांख्य दर्शन में आसन, धारणा, ध्यान आदि योगांगों का योग सूत्रानुसार ही पृथक् सूत्र रचकर स्वरूप निर्धारण किया है। यहां तक कि दोनों शास्त्रों में कुछ सूत्र शब्दशः समान है।15 योगशास्त्र में वर्णित आसान, वृत्तियाँ और उनका स्वरूप, उनका विरोध और निरोध का प्रतिफल, पंच क्लेश, वृत्ति निरोध के साधन, अभ्यास और वैराग्य क्रिया, योग, ध्यान और समाधि आदि का वर्णन सांख्य सूत्रों से पर्याप्त साम्य रखता है।

सांख्य दर्शन की राय है कि स्वभाव से नित्य शुद्ध–बुद्ध मुक्त जीव प्रकृति के संपर्क संस्पर्श से बद्धवत् हो जाता है। प्रकृति के साथ संपर्क संस्पर्श का कारण बनता है अविवेक। जब तक अविवेक है तब तक प्रकृति योग है और जब तक प्रकृति योग है तब तक बंध रहेगा दुख और द्वंद भी रहेंगे, जन्म और मरण का चक्र भी रहेगा। इस अविवेक की औषधि केवल समाधि है। समाधि द्वारा चेतन–अचेतन भेद का साक्षात्कार जब आत्मा को हो जाता है तब अविवेक की गुंजाइश ही कहां रह जाती है? अविवेक गया तो प्रकृति से संपर्क भी गया। प्रकृति से संपर्क गया तो अपवर्ग मिला। कितना साम्य है इस प्रक्रिया का योग दर्शन के साथ।

न्याय शास्त्र समाधि की सत्कार्यता के लिए यम–नियमों पर विशेष बल देता है। वेदांत दर्शन मन को समाहित करने के लिए ध्यान सहित कई योगांगों का प्रतिपादन करता है। इसके अतिरिक्त हम प्राचीन साहित्य में भी योगानुष्ठान की माहिती निदर्शन पाते हैं। महाभारत के अनेक प्रकरणों विशेष तथा शांति पर्व अश्वमेध पर्व तथा अनुशासन पर्व में योग विषयक महत्वपूर्ण सूचनाएं हैं। महाभारत की अंतर्वर्ती गीता तो 'योग' विषयक अनेक क्रांतिकारी परिभाषाओं और घोषणाओं का जीवंत दस्तावेज ही है। 'योग' शब्द को नए–नए संदर्भों में प्रयुक्त कर योगाचार के क्षेत्र और उसके आधारों को जैसा विस्तार और स्वरूप गीता ने दिया है वह सचमुच युगांतकारी है। योग की परिभाषा एवं योगचर्या और उसकी अंतर्निहित तत्वों–तप, कर्म, स्वाध्याय, ध्वनि, एकाग्रता, अभ्यास, वैराग्य, आहार, विहार, दिनचर्या आदि का जैसा मनोरम, सरस और प्रवाहशील विवरण हमें गीता में मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभप्रायः ही है। ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग आदि के रूप में योगचर्या के बहुआयामी रूप का हम गीता में पर्याप्त विस्तार पाते हैं।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ–

1– योग साधना व योग चिकित्सा रहस्य, स्वामी रामदेव, पृष्ठ 10–11
2– अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्। याज्ञवल्क्य स्मृति–1.8
3– ऋग्वेद – 05.81. 01
4– मैत्रायणीसंहिता दृ 02.07.01
5– समस्त प्रकरण के लिए दृष्टव्य–
यजुर्वेद– 18.2, 6.20, 22.33, 1.20, 7.27, 13.29
6– प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या।
व्यानोदानौ वाड्मनस्ते वा आकूतिमावहन्।। अथर्व.–11.08.04
प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या।
व्यानोदानौ वाड्मनः शरीरेण त ईयन्ते।। अथर्ववेद–11.08.26
7– प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं नशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्सर्वं प्रतीष्ठितम्।। अथर्ववेद–11.4.1
8 –सप्तऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्। यजुर्वेद– 34–55
9 – याज्ञवल्क्य स्मृति– 12.5
10 – महाभारत– 12.349.65
11 – महाभारत– 12.342.96
12 – हिरण्यगर्भो जगदन्तरात्मा। अद्भुत रामायण– 5.6
13 – आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ।
14 – सांख्ययोगौ पृथक् बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः। गीता–5.4
15 – (क) स्थिरं सुखमासनम्। योगसूत्र– 2.46 तथा संख्या सूत्र– 3.34
(ख) वृत्तयः पञ्चतयः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः। योग सूत्र– 1.5 तथा संख्या सूत्र– 2.33